गिरजाघर सर्वधर्मभाव का केंद्र बने

डॉ. एम. डी. थॉमस

यह कहने की जरूरत नहीं होती है कि गिरजाघर ईसाई समुदाय की पहचान है। वर्तमान समय में और वह भी भारत-जैसे देश में, जहाँ धर्म, जाति, भाषा, विचारधारा, संस्कृति, आदि को लेकर बहुविध छोटे-बड़े समुदाय एक साथ रहते हैं, गिरजाघर की तहज़ीब क्या होनी चाहिये, यह एक अहम् सवाल है। जब कोई कहीं अकेला रहता है तब उसका रहन-सहन और चाल-चलन अपने ही ढंग का हो, यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है। किंतु, जब कई लोग एक इलाके में मिलकर रहते हैं, तब उन सबके तौर-तरीके कुछ अलग होने चाहिये और यही तो सामाजिक कायदा है। यह इस लिये है कि इन्सान सामाजिक जीव है और उसे व्यक्ति और समुदाय के स्तर पर उसी तर्ज पर अपनी जिंदगी को निभाना होता है। अन्यथा होने पर वह आदर्श जीवन-शैली से चूक जाता है और यह उसके लिये कतई शोभादायक नहीं है। यह बात गिरजाघर पर भी बराबर लागू होती है।

'ईसाई' शब्द की सार्थकता ईसा से जुड़े रहने में है। ईसा के साथ करीब का रिश्ता कायम रखना ईसाई का बुनियादी भाव है। ईसा की अनूठी शाख्सयत में गुरु के विश्व रूप को पहचान कर उनसे सदैव सीखते रहना और 'ईसा-जैसे बनना' शिष्य होने के नाते ईसाई का खास फर्ज है। ईसा ने अपने निजी एहसास से यह प्रकट किया था कि ईश्वर 'पिता' है और यही ईसाई विश्वास की बुनियाद है। खुदा को 'पिता' मानने का सीधा मतलब यह हुआ कि सब इन्सान खुदा की औलाद है, उसके बेटे-और बेटियाँ हैं। इस मान्यता की वजह से सार्वभौम तौर पर हर इन्सान को दूसरे से भाई और बहन के रूप में जुड़ना होता है। साथ ही, जैसे बाइबिल के पहले अध्याय में पढ़ने को मिलता है, ईश्वर ने इन्सान को अपना 'प्रतिरूप' बनाया और इस कारण इन्सान ईश्वर के सदृश है और उसमें ईश्वर की छाया पायी जाती है। इस बात को आगे बढ़ाते हुए पौलुस कहते हैं कि 'इन्सान ही ईश्वर का असली मंदिर' ह और ईश्वर उसमें निवास करता है। इसके अलावा, ईसा ने कहा था कि 'तुम ने मेरे इन भाइयों और बहनों के लिये, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, जो कुछ किया, वह तुम ने मेरे लिये ही किया'। याने, इन्सान के लिये जो किया जाता है, वह ईश्वर के लिये ही किया जाता है। ये सब बातें ईसाइयत के लिये मर्म-समान खास हैं और ये सिर्फ ईसाइयों के लिये नहीं कही गयी हैं, बल्कि सभी इन्सानों पर बराबर मात्रा में लागू होती हैं। अब सवाल यह उठता है कि ईसाई लोग इन बातों को कितने गहरे और व्यापक अर्थ में समझते और उन पर अमल करते हैं।

मानव समाज में, जाहिर तौर पर, अनेक छोटी-बड़ी धार्मिक परंपराएँ मौजूद हैं। ईसाइयत के उपर्युक्त नज़रिये के कारण ईसाइयों को उन तमाम परंपराओं का भी सम्मान करना चाहिये। उन्हें अन्य महापुरुषों और धर्म-पुस्तकों से भी कुछ प्रेरणा लेनी चाहिये। कुएँ के मेंढक के समान अपनी परंपरा की चहारदीवारियों में कैद होना, द्वीप के समान दूसरों से कटे हुए रहना और समांतर रेखाओं-सरीखे अलग-अलग चलते रहना किसी भी धर्म-समुदाय के लिये श्रेयस्कर नहीं होगा। ईसाई समुदाय के लिये यह रवैया खुद के ही खिलाफ होने के बराबर है। आस्था, धर्म या विश्वास आसमान के समान है और उसे बाँटी नहीं जा सकती है। यह हवा-जैसी बेरोक-टोक चलती है। मानव समाज की समूची संस्कृतियों, विचारधारओं और सामाजिक धाराओं के साथ-साथ धर्म-परंपराएँ भी एक ही खुदा की देन हैं। वे मानव समाज का साझा धरोहर हैं। वे मेरी और तुम्हारी न होकर 'हमारी' है। उनमें कोई भी परायी नहीं है। 'एक खास तौर पर मेरी है, अन्य आम तौर पर मेरी'। बस, खास और आम का ही फर्क है। वे परंपराएँ 'इंद्रधनुष' के समान हैं, जो बहुत रंगों का समवाय है और एक साथ रहने से ही उसमें खूबसूरती होती है। वे एक दूसरे के पूरक हैं। भिन्न-भिन्न धार्मिक परंपराएँ एक पेड़ की अलग-अलग डालियों के समान, अलग होकर भी एक खुदाई सोते से मूल रूप से जुड़े हैं। पिता ईश्वर पेड़ की जड़ है, ईसा उसका तना और ईसाई तथा अन्य इन्सान उसकी डालियाँ। बालिग ईसाई के लिये आवश्यक है कि ईसाइयत की उसकी समझ गहरी हो और ओरों से जुड़ने का उसका दायरा बड़ा होता जाये। आस्था की जड़ें जैसे-जैसे खुदा की ओर गहराई में जाती हैं, ठीक वैसे-वसे

ही इन्सानियत की डालियाँ भी चारों तरफ रिश्ता-भाव से फैलती रहती है। इस लिये सार्थक ईसाई जीवन के लिये दूसरी धार्मिक समुदायों के लोगों के साथ सरोकार बनाये रखना अनिवार्य है।

ईसा की दृष्टि में 'इन्सान धर्म के लिये न होकर धर्म इन्सान के लिये है'। धार्मिक विश्वास और अनुष्ठानों का उद्देश्य इन्सान को भला-चंगा करना है। केरल के दार्शनिक, समाज-सुधारक और संत कवि श्री नारायण गुरु का कहना है 'मजहब हो कोई भी, इन्सान भला सो भला'। 'बेहतर इन्सान बनना' ही आस्था और विश्वास का नतीजा है। सब परंपराओं में ऐसे सार्वभौम आध्यात्मिक मूल्य हैं जो इन्सान को इन्सान बनाने लायक हैं। जरूरत इस बात की है कि धर्मी लोग अपनी परंपरा के मूल्यों को गहराई से अपनाने के साथ-साथ दूसरी परंपराओं के मूल्यों से भी वु छ-न-कुछ सीखें। महात्मा कबीर की उक्ति इस संदर्भ में प्रासंगिक है, 'सार-सार को गहि रहें, थोथा देय उड़ाय'। मधुमक्खी के समान 'सर्वगुणग्राही' होना ईसाइयत की ही नहीं, तमाम मजहबों की असली पहचान और प्रासंगिकता है। कबीर की ही दो पक्तियाँ इस आदर्श को अमलीजामा पहनाने की तरकीब बताती हैं -- 'बहता पानी निर्मला, बंदा गंदा होय; साधू जन रमता भला, दाग न लागे कोय।' अर्थात्, इन्सान को, खास तौर पर धार्मिक व्यक्ति को, बहते पानी के समान एक दूसरे की ओर चलते रहना होगा। अपने संकीर्ण दायरे में खोये रहने से धर्म, अध्यात्म, इन्सानियत, ईसाइयत, जिंदगी, आदि पर दाग लग जायेगा। आखिर, मिल-जुल कर रहना, एक दूसरे से सीखना, एक दूसरे से प्यार करना, एक दूसरे की मदद करना, एक दूसरे का हमसफर बनना, आदि ही तो जिदगी है। इस लिये ईसाई को विश्वगुरु ईसा से प्रेरणा पाकर, उन्हीं के महान आदर्शों व मूल्यों के बूते पर, अपने दिल-दिमाग के दायरे को बड़ा करना होगा। साथ ही, धार्मिक धाराओं के दरमियान फर्क नहीं करते हुए तमाम समुदायों के लोगों के साथ प्यार-मुहब्बत का सरोकार और व्यवहार करना होगा।

उपर्युक्त आदर्श को हकीकत बनाने के लिये, गिरजाघर ही सबसे कारगर ज़रिया है। गिरजाघर ईसाई साधना का केंद्र ही नहीं, ईसाई समुदाय की सबसे छोटी इकाई भी है। गिरजाघर ईसाई जीवन-दृष्टि और जीवन-शैली का जीवंत प्रतीक बनकर रहे, यही इसकी सार्थकता है। खास तौर पर भारत में गिरजाघर अन्य धर्मों के देवालयों के बीच अपना वजूद रखता है। ईसाइयों का महज एक उपासना-स्थल बनकर रहना गिरजाघर के लिये कभी भो प्रतिष्ठा की बात नहीं होगा। गिरजाघर को सिर्फ ईसाइयों का न होकर सब समुदायों के लोगों का स्वागत करने की जगह होनी चाहिये। साथ ही, गिरजाघर को केद्र बनाकर सर्व धर्म सम्मेलन नियमित रूप से चलते रहना चाहिये। यह जरूरी है कि हर गिरजाघर का अपने अड़ोस-पड़ोस में स्थित मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, आदि के साथ ताल्लुकात रहे। गिरजाघर के प्रमुख को चाहिये कि अपने भौगोलिक क्षेत्र में मौजूद समस्त धर्म-गुरुओं और प्रमुख धर्मानुयायियों के साथ-साथ प्रशासनिक और अन्य पमुखों से भी घुल-मिलकर रहे। आपसी सलाह-मशविरा करके आस-पास के इन्सानी समाज को बेहतर बनाने के लिये सहकारी योजनाएँ चलायी जानी चाहिये। बेहतर देश और बेहतर समाज को बनाने के लिये मिलकर काम करने में धार्मिक विश्वास का गुणात्मक नतीजा उभरकर आता है। गिरजाघर को सक्रिय रूप से सर्व धर्म भाव बढ़ाना होगा। तभी गिरजाघर की असली आध्यात्मिक रौशनी आस-पास फैल जायेगी। इक्कीसवीं शती में, वह भी भारत के बेशुमार धार्मिक, वैचारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक धाराओं के संदर्भ में, प्रत्येक गिारजाघर को एक 'मिली जुली और शांतिप्रिय संस्कृति' की जलती मशाल बननी होगी, जहाँ ईसा के सर्व-समावेशी और सर्वगुणग्राही आध्यात्मिक बुलंदियों से मानव समाज में निखार आता जाये।

डॉ. एम. डी. थॉमस
संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS